

भारत के जनजातीय रीति रिवाज़ और प्रकृति संरक्षण

डॉ. अनुराधा अस्थाना सिंह*

सार (एब्सट्रैक्ट)

जनजातीय समाज, सदियों के शोषण के कारण एक वंचित समाज रहा है, पर इनके समाज और संस्कृति में ऐसी बातें हमें दिखती हैं जो, आज की समस्याएं विश्व झेल रहा है उनका हल इनके पास है। वो शासक भी रहे हैं। लोहा पिघलने की कला भी इन्हे आती थी। तकनीक इनकी बहुत विकसित थी। पर आदिवासी को एक अलग तरीके से अभी भी देखा जाता है। जब हम दर्शन की बात करते हैं तो सभी धर्म या दर्शन इंसान को केंद्र में रख के बात करते हैं। पर आदिवासी जब बात करता है तो वो कभी पुत्र प्राप्ति या दूधो नहाओ पूतो फलो की बात नहीं करता। वो ये कहते हैं की जंगल आबाद रहे, बारिश होती रहे, प्रकृति स्वस्थ रहे। फसलों की चिंता, पशुधन की चिंता ---समस्त पशुधन, वनस्पति और प्रकृति के तत्त्व जैसे पहाड़, पत्थर इत्यादि के लिए ये शुभ कामनाएं करते हैं। ये मानव को श्रेष्ठम सृष्टि की इकाई नहीं मानते हैं बल्कि पूरी प्रकृति की कुशलता की कामना करते हैं। संवेदनशीलता हर प्राणी में है आज हम इंटरनेट की दुनिया में रहते हैं पर नैसर्गिक जंगल में पेड़ों की जड़ें एक दुसरे के साथ फंगस के नेट से जुड़ी हैं। कोई पेड़ अगर बीमार है तो दुसरे पेड़ उससे ठीक होने के संकेत और उपचार भेजते हैं। प्रकृति कितनी विकसित है। आज पूरा विश्व सतत विकास की बात करता है, यानि की प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट किये बिना विकास करना। हर वर्ष यूरोप के किसी देश में पर्यावरण संरक्षण के उपायों पर, ओजोन परत के क्षरण पर शासनाध्यक्ष और पर्यावरणविद बड़ी बड़ी चर्चाओं में भाग लेते हैं और प्रस्ताव पारित किये जाते हैं। अगर हम जनजातीय संस्कृति और इतिहास का अध्ययन करें तो हमें पता चलता है की हजारों वर्ष पूर्व भी ये प्रकृति से जुड़े रहे और प्रकृति की रक्षा करना इनका सबसे बड़ा कर्तव्य रहा। जनजातीय समुदाय में स्वर्ग नरक की परिकल्पना नहीं है। ये मानते हैं कि पितर हमारी रक्षा करते हैं। उन्हें घर में ही स्थान दिया गया है। साल के वृक्ष दिवार हैं, घास फर्श है और आसमान छत है। इसलिए उनके मंदिर के भवन नहीं हैं। भगवान का निवास प्रकृति में ही है। समानता इस संस्कृति के मूल में है। शंकराचार्य का अद्वैतवाद कहता है की हर मनुष्य में ईश्वर है, पर आदिवासी दर्शन कहता है की इस विश्व के हर जीवित और अजीवित तत्त्व में भगवान् का निवास है। अतः प्रकृति की पूजा ही ईश्वर की पूजा है। स्त्रियों के प्रति सहज सम्मान का भाव है। शुरुआत में समाज मातृसत्तात्मक था। आदिवासी समाज के गोत्र सप्तऋषिओं से नहीं आते बल्कि प्रकृति के ही किसी न की तत्त्व को इंगित करते हैं। जैसे कि लकड़ा गोत्र बाघ से, खाखा गोत्र कौवे से निकला है। कुजूर गोत्र के पीछे यह कहा जाता है की कुजूर पौधे ने एक व्यक्ति की रक्षा की थी। प्रस्तावित आलेख में जनजातीय समुदाय के प्रकृति से लगाव और प्रकृति पर निर्भरता दिखाते हुए यह बताने की कोशिश की जायेगी कि आज की समस्याओं का निदान आदिवासी समाज की रीतिओं को समझ कर कैसे किया जा सकता है।

Key words : असुर, मालपहाड़ी, सरना-दर्शन, सियानी, कर्मा

प्रस्तावना

भारत की जनजातीय संस्कृति हमारे देश की वह अमूल्य निधि है जो एक अविरल धरा के रूप में आदिकाल से बहती आयी है। इस अमूल्य निधि को बचाना हमारा परम कर्तव्य है। जनजातीय समाज सदियों से एक शोषित समाज रहा है। जब इसकी संस्कृति और इनके तौर तरीकों का अध्ययन किया जाता है तो यह ज्ञात होता है की आज जिन समस्याओं को हमारा विश्व झेल रहा है उसका उपाय तो जनजातीय संस्कृति में पहले से मौजूद है। ये उस इलाके में प्रागैतिहासिक काल से रहते आये जो वृक्षों और पहाड़ों से आच्छादित रहा- -- जैसे झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश के इलाके, उड़ीसा, तेलंगाना का कुछ क्षेत्र, महाराष्ट्र और गुजरात आदि। पर ये वाह्य जगत से कटे हुए कभी नहीं रहे। प्राचीन काल हो (गुप्ता काल और शशांक को छोड़ कर), सल्तनत शासन हो या मुगल शासन --- कोई भी केंद्रीय शक्ति इन जनजातीय इलाकों को अपने पूर्ण नियंत्रण में नहीं ला सके। यह भी सही है की उत्तर भारत में आर्य जाति के आगमन के बाद इन्हे मैदानी इलाकों से खदेड़ा गया तब इन्ही पर्वतों और जंगलों ने इन्हे आश्रय दिया और आदिवासी जातियां जैसे हो, मुंडा, उरांव, संथाल आदि यहां बस गए। प्रारंभिक जनजातियां जैसे असुर नव पाषाण कल से लेकर लौह युग तक छोटानागपुर प्रदेश में फलते फूलते रहे। लोहा गलाने से लेकर भवन निर्माण की कला में वो माहिर थे। सदियों के शोषण और वंचन के बावजूद भी इस समाज और संस्कृति में ऐसी बातें निहित हैं जो आज के विश्व की चर्चा का केंद्र हैं जैसे कि " सतत विकास ", " वसुधैव कुटुम्बकम्", संसाधनों की रक्षा इत्यादि। प्राकृतिक सांसदों को नष्ट किये बिना, किसी भी प्रजाति को नष्ट किये बिना विकास की बात की जाती है। हर वर्ष विश्व के किसी न किसी बड़े शहर में पर्यावरण संरक्षण के उपायों पर देशों के राष्ट्राध्यक्ष या शासनाध्यक्ष बड़ी बड़ी चर्चाओं में भाग लेते हैं। प्रस्ताव पारित किये जाते हैं। जनजातीय संस्कृति का अध्ययन करने पर यह पता चलता है की हज़ारों वर्षों से ये प्रकृति से जुड़े रहे हैं और इस वसुंधरा की रक्षा करना इनका सबसे बड़ा कर्तव्य है।

साहित्य अवलोकन :

जनजातीय इतिहास और संस्कृति पर हिंदी या किसी क्षेत्रीय भाषा में शुरुआती दौर में कोई ग्रन्थ या लेख प्राप्त नहीं होता है। ब्रिटिश शासन काल के प्रारंभिक काल में दो तरह के विद्वान थे जो जनजातीय संस्कृति को जानने के इच्छुक थे--- । ओरिएंटलिस्ट स्कॉलर्स और २ ईसाई मिशनरीज। एम् सी राय की पुस्तक " मैं इन इंडिया " जनजातीय इतिहास के कई पहलुओं को उजागर करती है। उनीसवीं सदी के उत्तरार्ध में एच एच ब्लॉकमैन द्वारा रचित आलेख विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लिखा गया था। बाद में झारखण्ड के विद्रोहों जैसे कोल विद्रोह, संथाल विद्रोह आदि के बारे में इतिहासकारों जैसे डॉ जे सी झा, डॉ एस पी सिन्हा, डॉ ए पी वर्मा आदि ने कार्य किया। पर जनजातीय संस्कृति के बारे में उनके रहन सहन को देखकर और उनके द्वारा अपनाये जाने वाली रीतिओं को देख कर ही अनुमान लगाया जा सकता है।

जनजातीय समाज : एक परिचय ---

विभिन्न जनजातियां भारतीय समाज का एक प्रमुख हिस्सा है। इनकी अपनी विशिष्ट भाषा, रहन सहन, रीती रिवाज और जीवन शैली है। आपस में इनके कई रीती रिवाज मिलते जुलते हैं। भारत के संविधान के आर्टिकल ३४२ ने इन्हे अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया है। अनुच्छेद १५(४) और १६ (४) में इनको शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में आरक्षण का प्रावधान है। इसी तरह अनुच्छेद ३३०, ३३२ और २४३ डी में लोक सभा, राज्य सभा, राज्य विधायिकाओं और पंचायत आदि में आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। यद्यपि हमारा संविधान इन्हे आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ा मानता है, पर सांस्कृतिक रूप से ये कहीं आगे हैं। भारत में ७०० से अधिक जनजातियां हैं जैसे गोंड, भील, संथाल, मुंडा, ओराओ, बैगा, नागा, कुजूर, केरकेट्टा आदि। इनकी जीवन शैली मुख्यतः प्रकृति आधारित है। जंगल, पृथ्वी, पशु, नदी, पहाड़

इत्यादि पूज्यनीय माने जाते हैं। मुख्यतः कृषि पर आधारित ये जनजातियां हैं। पर यह भी मानना होगा कि कुछ के पास कृषि भूमि थी जैसे मुंडा ओराओं आदि, पर कुछ जनजातियां वंचित समाज में आती हैं जैसे असुर, मालपहाड़ी आदि। असुरों को लोहा गलाने की प्रक्रिया आती थी।

जनजातीय दर्शन और प्रकृति से लगाव :

अद्वैतवाद की परिकल्पना हर जीव में ईश्वर पर आधारित है जिसे सोअहं कहा गया है। पर जनजातीय दर्शन जिसे "सरना दर्शन" के नाम से भी जाना जाता है, वह अद्वैत दर्शन से भी कहीं आगे है क्योंकि यह सभी जीव के साथ सभी अजीवों जैसे पहाड़, पत्थर, नदी में भी ईश्वर के अस्तित्व को मानता है। भौतिक और पराभौतिक रूप से ये प्रकृति से जुड़े हुए हैं। आध्यात्मिक भूख भी प्रकृति से ही पूरी होती है। इनका कोई विशेष पूजा स्थल नहीं होता। वृक्षों का समूह ही पूजा स्थल बन जाता है। इनका कोई ईश्वर दूत नहीं है। न ही इनकी कोई पवित्र पुस्तक है। जनजातीय समुदाय में नरक की परिकल्पना नहीं है। उनका मानना है कि पितर ही रक्षा करते हैं। उन्हें घर में ही स्थान दिया गया है। साल के वृक्ष दीवार हैं, घास फर्श है और आसमान छत है। इसलिए उनके मंदिर के भवन नहीं हैं। समानता इस संस्कृति का मूल मन्त्र है और प्रकृति की पूजा ही ईश्वर की पूजा है। आज के सन्दर्भ में इस विचार की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है जब सतत विकास और प्राकृतिक संसाधनों के बचाव के लिए बड़ी बड़ी योजनायें बनाई जा रही हैं और उनका कार्यावयन किया जा रहा है। अनेक जनजातीय त्यौहार और अनुष्ठान प्राकृतिक चक्रों और अनुष्ठानों से जुड़े हुए हैं। ये सांस्कृतिक घटनाएं प्रकृति के प्रति सम्मान को दिखाती हैं। जब हम गोल की बात करते हैं तो हिन्दुओं के गोल सप्तरुषिओं से आते हैं। पर जनजातीय समूहों में ये गोल प्रकृति के ही किसी न किसी तत्व को इंगित करते हैं। जैसे की लकड़ा गोल बाघ से, खाखा गोल कौवे से। कुजूर गोल के पीछे की कथा है की कुजूर के पौधे ने एक व्यक्ति की रक्षा की थी इसलिए कुजूर गोल का अविर्भाव हुआ।

प्रकृति और पर्यावरण का सह अस्तित्व :

भारतीय संस्कृति में पृथ्वी, वायु, जल, आकाश और अग्नि को जीवन का आधार मन गया है। जनजातीय समाज भी इन्हीं तत्वों को पूजता है।

प्रकृति की पूजा करना, प्राकृतिक उत्पादों का उपभोग करना और प्रकृति का संरक्षण करना इनका मुख्य उद्देश्य रहा है। "बैगा" जाति को जंगल का संरक्षक मन गया है। प्रकृति से ये इतना ही लेते हैं जितना आवश्यक होता है। प्रकृति से सामंजस्य का ज्ञान, समाज और अनुशासन के साथ प्रकृति का ज्ञान है। बैगा जनजाति का करमा नृत्य आस्था, प्रकृति और नई फसल की खुशी का उत्सव है। भादों की एकादशी पर करम वृक्ष की पूजा के साथ इसकी शुरुआत होती है। सुर, लय और अंग संचालन के साथ यह नृत्य जीवंत हो उठता है। हर गीत में उनकी सांस्कृतिक विरासत झलकती है। यह परंपरा समुदाय को एक सूत्र में बांधती है। "मुरिआ" जनजाति में "घोटुल" जैसी सामुदायिक संस्था है जो युवाओं को प्रकृति और संस्कृति के संरक्षण का ज्ञान देती है। इसी तरह साल वृक्ष की पूजा सरहुल त्यौहार में की जाती है जहाँ ओराओं जनजाति चैत्र माह में इस पर्व को मानती है और प्रकृति के प्रति धन्यवाद व्यक्त करते हैं। पर्व मनाने का मुख्य उद्देश्य सुख शांति और समृद्धि की कामना करना है।

हो जनजाति के लोग, जो प्रकृति उपासक हैं, सरना धर्म में विश्वास रखते हैं। सरना शब्द सिर (तीर) से लिया गया है। हो जनजाति के लोगों का पूजा स्थल एक पवित्र उपवन होता है, जहाँ प्राचीन सरकोमा (साल) के वृक्षों का समूह स्थित होता है। रॉय (1912) ने अपनी प्रथम महत्वपूर्ण कृति "मुंडा और उनका देश" में उल्लेख किया है कि यद्यपि बहुत से वन काटे जा चुके हैं या आग लगने से बर्बाद हो गए हैं पर प्राचीन वृक्षों का

समूह मौजूद है जो गांव के मंदिर के रूप का प्रतिनिधित्व करता है। इसे सरना कहा जाता है। यहाँ गाँव के देवता निवास करते हैं, और समय-समय पर उनकी पूजा और बलि देकर उन्हें प्रसन्न किया जाता है। इसी तरह डाल्टन (1872:56-57) और डेहॉर्न (1906:124) ने उल्लेख किया है कि धर्म प्रकृति में मिश्रित है। हो जनजाति के लोग अपने सभी देवी-देवताओं और आत्माओं को बोंगो कहते हैं और उनके अनुसार ये बोंगो मानवरूपी नहीं हैं। बोंगो एक सामान्य शब्द है, जिसका प्रयोग शक्ति और आत्मा को दर्शाने के लिए किया जाता है।¹ बोंगो शक्ति प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक पशु, प्रत्येक पौधे और प्रत्येक धारा, नाले, तालाब, चट्टान, वृक्ष, वन क्षेत्र और पर्वत में विद्यमान है। इसी तरह कर्मा पूजा है जिसका केंद्र है कर्मा वृक्ष, जिसे जीवन, समृद्धि और उर्वरता का प्रतीक माना जाता है। युवा पुरुष और महिलाएँ जंगल से इसकी शाखाएँ लाते हैं और इन्हें गाँव के अखाड़ा (नृत्य स्थल) या आँगन में गाड़कर पूजा करते हैं। इस पर्व को अनेक आदिवासी समुदाय मनाते हैं, जिनमें उरांव, मुंडा, हो, संथाल, खड़िया, खरवार, बैगा, गोंड, कोल, महली, बिरहोर, असुर, भूमिज और कुरुख शामिल हैं। हर जनजाति अपने विशेष गीत, कथाएँ और परंपराएँ जोड़ती है, जिससे यह त्योहार विविधता में एकता का जीवंत उदाहरण बनाता है। यह पर्व कृषि चक्र से जुड़ा है। कर्मा वृक्ष की पूजा अच्छी फसल और आपदाओं से रक्षा सुनिश्चित करती है।

आज विश्व में पर्यावरण को लेकर बहुत चिंता है। ओजोन लेयर के क्षरण को लेकर या ग्रीन हाउस गैस के प्रभाव को रोकने को लेकर, हर वर्ष विश्व के किसी आकर्षक शहर में शासनाध्यक्ष और पर्यावरणविद मिलते हैं ---प्रस्ताव पारित किये जाते हैं और कानून बनाए जाते हैं। ऊर्जा के गैर पारम्परिक स्रोतों जैसे पवन ऊर्जा, सौर ऊर्जा, बायोमास और बायोगैस आदि के प्रयोग पर बल दिया जाता है। अगर हम जनजातीय इतिहास और संस्कृति का अध्ययन करें तो पता चलता है की हज़ारों वर्ष से, सदियों से, जनजातीय समाज प्रकृति से जुड़ा रहा और प्रकृति संरक्षण इनका सबसे बड़ा कर्तव्य रहा है। कोविड - १९ जैसी माहमारी विश्व के लिए बहुत बड़ी चुनौती थी। पर हमें यह जान कर आश्चर्य होता है की जनजातीय समूहों पर इनका सबसे कम असर पड़ा। माहमारी की स्थिति में जनजातियां ग्राम छोड़कर जंगलों की तरफ चली गईं और वापस तभी लौटी जब तक माहमारी का प्रकोप कम नहीं हो गया। जनता के सहयोग और भागीदारी से ही इतनी बड़ी समस्या से हम निकल पाए।

एथनोसांफिटिक अध्ययन यह बताता है कि जनजातीय समुदाय पर्यावरण को एक भौतिक संसाधन के रूप में नहीं बल्कि सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक तौर पर देखता है। संथालों कि पारम्परिक कृषि पद्धति जैसे झूम खेती, भूमि कि उर्वरता और पर्यावरण सतुलन को ध्यान में रख कर अपनायी गयी है। महुआ का वृक्ष न सिर्फ आर्थिक महत्व का है पर धार्मिक अनुष्ठानों में भी इसका प्रयोग होता है। इनका ज्ञान तंत्र पूरी तरह पर्यावरण के अनुभव पर और पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा। इनकी कृषि प्रणाली मिश्रित कृषि पर आधारित है जिसमे ये धान, मक्का बाजरा, तथा अन्य सब्जियां उगते हैं। फसल चक्र, सहफसली खेती और जैविक खाद का प्रयोग मिटटी कि उर्वरता बनाये रखते हैं। वे देशज बीजों का संरक्षण करते हैं जो जलवायु के अनुकूल और लचीले होते हैं।² सरना या पवित्र वन प्रदेश उनके धार्मिक विश्वास का हिस्सा हैं जो जैव विविधता के संरक्षण के साथ साथ सामाजिक प्रतिबद्धता भी दर्शाते है।

1 मजूमदार 1950:264-267

2 दत्ता , २०२४) दत्ता, बी., गांताई, एस., हांसदा, एस., & दास, ए. के. (2024). डॉक्युमेंशन ऑफ हांडशजजनस मेशडशसनल नॉलेज ऑफ शसलेकुरिडबल कमयुशनीज ऑफिसिबिंगाल. निशाल ऑफ डाटा साइंस, इन्फोमेतरक्स एंड साइटेन स्टडीज़, 3(3), 349-355.

<https://doi.org/10.5530/jcitation.3.3.३४>(<https://thearyapublication.com>

लिंग समानता और स्त्री की भूमिका :

जनजातीय समाज में महिलाओं को पुरुष के समकक्ष स्थान प्राप्त है। वे खेतों में काम करती हैं, और सामाजिक जीवन में सक्रिय रहती हैं। जनजातीय महिलाओं के लिए "सियानी" शब्द का प्रयोग होता है जिसका मतलब है बुद्धिमती। ये मस्तिष्क के सौंदर्य को रेखांकित करता है न कि तन के सौंदर्य को। वही दूसरी तरफ हम पूर्व वैदिक काल और उसके बाद देखें तोह स्त्री एक उपभोग कि वास्तु के रूप में दिखाया गया है जिसका काम है कृषि कार्य करने के लिए लड़कों को जन्म देन। शायद इसलिए उसके लिए "जननी" शब्द का प्रयोग किया गया। रोहतासगढ़ के किले पर आक्रमण में सिंघनी दाई और कैली दाई नामक महिलाओं का योगदान अविस्मरणीय है। जनजातीय महिलाओं सिंघनी दाई, कैली दाई और चम्पू दाई द्वारा रोहतासगढ़ के किले का किया गया बचाव इन महिलाओं कि वीरता को दिखता है। धनुष-बाण, तलवार, लाठी, भाला इत्यादि कि मदद से लड़ा गया ये युद्ध गुरिल्ला विधि से लड़ा गया।³

इसी तरह १८३१-३२ का बिरसा मुंडा का उलगुलान हो और उसमे उनकी बेटियों रुनिआ और झुनीआ का योगदान या १८५५ के संथाल हूल में फूलो झानो और अन्य महिलाओं का योगदान जनजातीय महिलाओं कि सुदृढ़ स्थिति को दर्शाता है। रसद पहुंचने के साथ साथ दुश्मन की जानकारी एकत्र करना और रात्रि के समय शत्रुओं के टेंट पर हमला करना इनका मुख्य कार्य था। बात कृषि की हो, घर का प्रबंधन करने की, धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने की या फिर युद्ध क्षेत्र की---जनजातीय महिलाओं ने हर क्षेत्र में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। आज जो महिला सशक्तिकरण के आंदोलन चल रहे हैं---हमारी जनजातीय महिलाएं तो सदियों पहले से सशक्त रही है।

सामुदायिकता और लोकतान्त्रिक मूल्य :

जनजातीय समाज का अध्ययन करने से पता चलता है कि लोकतान्त्रिक मूल्यों में इनकी बहुत आस्था है। आज का समाज औद्योगिक क्रांति और सर्विस सेक्टर के दुष्परिणाम झेल रहा है--- जैसे संयुक्त परिवार प्रथा का विनाश। आधुनिकता कि लहर हमे अकेला कर रही है जिसकी परिणीति अवसाद, नशा, तलाक, और आत्महत्या होता है। पर जनजातीय संस्कृति में स्व से पहले समुदाय, साझा जीवन शैली और पारस्परिक सहयोग को रखा जाता है। लोकतंत्र का मतलब सिर्फ वोट डालना नहीं, बल्कि एक सहभागी लोकतंत्र कि परिकल्पना है जिसमे सर्वसम्मति से सामुदायिक निर्णय लेना, लैंगिंग समानता और आत्मनिर्भरता है। "मदैत" परंपरा है जहाँ सामुदायिक रूप से एक दूसरे के खेतों में रोपाई और कटाई की जाती है। इसी तरह एक परंपरा है "मेहमानी" --अगर किसी व्यक्ति के घर आवश्यकता से अधिक उत्पादन हुआ है तो मेहमान आते हैं और अधिशेष उत्पाद को उपहार के तौर पर ले जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि आदिवासी टोले में कोई भूखा नहीं सोता है।

जनजातीय संस्कृति का एक प्रमुख तत्व अखड़ा है। अखड़ा संस्कृति जनजातीय समुदाय के उत्थान में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये एक सांस्कृतिक स्थल है। गांव के अखाड़े में गांव के वृद्ध समस्याओं को सुलझाते हैं। नृत्य तथा संगीत भी सामुदायिक होता है। यह सांमतवादी समाज जहाँ एक स्त्री नाचती है और पुरुष उसका आनंद लेते हैं उससे बिलकुल अलग है। यहाँ पूरा समुदाय भाग लेता है। झारखण्ड के मुख्यतः पश्चिम सिंघभूम, सराईकेला और रांची में रहने वाली हो जनजाति अपने विशिष्ट स्वायत्त तंत्र के लिए जानी जाती है। "मुंडा-मानकी" नामक एक राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्था है। स्थानीय स्तर पर यह दीवानी और जमीन सम्बन्धीवादों का निस्तारण करती आयी है। हो ग्राम का प्रमुख "

मुंडा" कहलाता है और उसका एक सहायक " डकुआ" तथा ग्राम पुजारी " दिउरी " होता है। ये तीनों ग्राम वासियों के सहयोग से कार्य करते हैं। असलियत में कोई भी निर्णय लेने के लिए ये ग्राम वासियों पर आश्रित होते हैं। मुंडा को पद से हटाया भी जा सकता है। वह ग्राम वासियों के प्रति सर्वदा उत्तरदायी रहा है। अगर कोई सड़क बनानी है या कोई तालाब बनना है तो वह ग्राम वासियों के सामूहिक प्रयास से ही होगा। आपसी भाईचारे और सहयोग की यह बहुत बड़ी मिसाल है।⁴ कोई भी पारिवारिक वाद हो --- जैसे भूमि, विवाह या पशु से सम्बंधित---उसका निबटारा प्रथागत कानून (कस्टमरी लॉ) से किया जाता था। पुलिस थाना जाने के बजाये ये अपने विवाद " मुंडा- मानकी " प्रथा से ही सुलझा लेते थे। २०२१ के एक आंकड़े के अनुसार पूर्वी सिंधभूम के गरसईन, फुल्कनि, सुपुरगुट्टु, भोभडीहा और माँझगाँवों ब्लॉक में पिछले १०० वर्षों में कोई भी दीवानी केस पुलिस स्टेशन या कोर्ट में दाखिल नहीं हुआ है।⁵

ग्राम पुजारी --दिउरी अक्सर एक मीडिएटर का काम करता है। इसी तरह डकुआ जन जागरण का काम करता है। कोविड १९ के समय भी डकुआ ने गाँव में जन जागरण फैलाने का काम किया जैसे लोगों को स्वच्छता के लिए प्रेरित करना। भाषा की समस्या के कारण गाँव में लोगों को बीमारी की विभीषिका के बारे में चेतावनी देना असंभव था। यह कार्य डकुआ ने भली भाँती किया। मुंडा - मानकी प्रथा में मानकी एक अपील के न्यायलय की तरह है। ये अनेक ही गाँव की काउन्सिल का अध्यक्ष है। कभी - कभार अगर कोई वाद मुंडा और ग्राम वासियों द्वारा हल नहीं हो पता था तो वह मानकी के पास भेजा जाता था। सामूहिक निर्णय प्रक्रिया, आपसी सहयोग और समानता के आधार पर चलती है। जनजातीय संस्थाएं जैसे अखड़ा ग्रामीण लोकतंत्र और स्थानीय स्वशासन को सुदृढ़ करता है। " सबका साथ सबका विकास " जैसा नारा इन जनजातियों में पहले से ही निहित है।

पारम्परिक ज्ञान और आत्मनिर्भरता :

जनजातीय ज्ञान प्रणाली, भारतीय ज्ञानपरंपरा का एक प्राचीन, समकालीन रूप है। यह प्रणाली जनजातीय समूहों के अनुभव पर आधारित है। ये सदियों से प्रकृति के साथ सह अस्तित्व में जीते आ रहे हैं। संथाल, भील, गोंड इत्यादि जातियाँ पर्यावरणीय समझ के साथ ज्ञान का संचरण करते रहे हैं।⁶

प्रकृति और पर्यावरण के साथ सह अस्तित्व :

आज पूरा विश्व सतत विकास की बात करता है। हम देखते हैं कि जनजातीय संस्कृति और दर्शन " प्रकृति मानव" सम्बन्ध कि बात करते हैं जो शोषण पर आधारित नहीं है। दोनों एक दुसरे को सम्मान और सहभागिता कि दृष्टि से देखते हैं और यही "सतत विकास" का मूल तत्त्व है। आधुनिक सामाजिक विज्ञान के इकोलॉजिकल एंथ्रोपोलॉजी और एसोफेमिनिस्म जैसे क्षेत्रों में अत्यंत प्रासंगिक है।

सामुदायिकता और लोकतान्त्रिक मूल्य :

यू एन डी पी (१९९३ :२१) की रिपोर्ट के अनुसार सहभागिता का मतलब है आर्थिक, सामाजिक और संस्कृतिक रूप से लोगों की सक्रीय संलिप्तता।

4 <https://www.ijtsrd.com/papers/ijtsrd57407.पीडीऍफ़>

5 दैनिक भास्कर, चैबास, पश्चिम सिंधभूम, झारखण्ड, १७ सितम्बर २०२१

6 भट्टाचार्य, 2022

जनजातीय समाज का अध्ययन करने से पता चलता है कि लोकतान्त्रिक मूल्यों में इनकी बहुत आस्था है। आज का समाज औद्योगिक क्रांति और सर्विस सेक्टर के दुष्परिणाम झेल रहा है--- जैसे संयुक्त परिवार प्रथा का विनाश। आधुनिकता कि लहर हमें अकेला कर रही है जिसकी परिणीति अवसाद, नशा, तलाक़, और आत्महत्या होता है।

पर जनजातीय संस्कृति में स्व से पहले समुदाय, साझा जीवन शैली और पारस्परिक सहयोग को रखा जाता है। लोकतंत्र का मतलब सिर्फ वोट डालना नहीं, बल्कि एक सहभागी लोकतंत्र कि परिकल्पना है जिसमें सर्वसम्मति से सामुदायिक निर्णय लेना, लैंगिंग समानता और आत्मनिर्भरता है। " मदैत " परंपरा है जहाँ सामुदायिक रूप से एक दूसरे को खेतों में रोपाई और कटाई करता है। इसी तरह एक परंपरा है " मेहमानी " --अगर किसी व्यक्ति के घर आवश्यकता से अधिक उत्पादन हुआ है तो मेहमान आते हैं और अधिशेष उत्पाद को उपहार के तौर पर ले जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि आदिवासी टोले में कोई भूखा नहीं सोता है। जनजातीय संस्कृति का एक प्रमुख तत्व अखड़ा है। अखड़ा संस्कृति जनजातीय समुदाय के उत्थान में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये एक सांस्कृतिक स्थल है। गाँव के अखाड़े में गाँव के वृद्ध समस्याओं को सुलझाते हैं। नृत्य तथा संगीत भी सामुदायिक होता है। यह सामंतवादी समाज जहाँ एक स्त्री नाचती है और पुरुष उसका आनंद लेते हैं उससे बिलकुल अलग है। यहाँ पूरा समुदाय भाग लेता है।

झारखण्ड के मुख्यतः पश्चिम सिंधभूम, सराईकेला और रांची में रहने वाली हो जनजाति अपने विशिष्ट स्वायत्त तंत्र के लिए जानी जाती है। " मुंडा- मानकी " नामक एक राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्था है। स्थानीय स्तर पर यह दीवानी और जमीं सम्बन्धीवादों का निस्तारण करती आयी है। हो ग्राम का प्रमुख " मुंडा " कहलाता है और उसका एक सहायक " डकुआ " तथा ग्राम पुजारी " दिउरी " होता है। ये तीनों ग्राम वासियों के सहयोग से कार्य करते हैं। असलियत में कोई भी निर्णय लेने के लिए ये ग्राम वासियों पर आश्रित होते हैं। मुंडा को पद से हटाया भी जा सकता है। वह ग्राम वासियों के प्रति सर्वदा उत्तरदायी रहा है। अगर कोई सड़क बनानी है या कोई तालाब बनना है तो वह ग्राम वासियों के सामूहिक प्रयास से ही होगा। आपसी भाईचारे और सहयोग की यह बहुत बड़ी मिसाल है।⁷ कोई भी पारिवारिक वाद हो --- जैसे भूमि, विवाह या पशु से सम्बंधित---उसका निबटारा प्रथागत कानून (कस्टमरी लॉ) से किया जाता था। पुलिस थाना जाने के बजाये ये अपने विवाद " मुंडा- मानकी " प्रथा से ही सुलझा लेते थे। २०२१ के एक आंकड़े के अनुसार पूर्वी सिंधभूम के गरसईन, फुल्कनि, सुपुरगुदु, भोभडीहा और माँझगाँवों ब्लॉक में पिछले १०० वर्षों में कोई भी दीवानी केस पुलिस स्टेशन या कोर्ट में दाखिल नहीं हुआ है।⁸

ग्राम पुजारी --दिउरी अक्सर एक मीडिएटर का काम करता है। इसी तरह डाकुआ जन जागरण का काम करता है। कोविड १९ के समय भी डाकुआ ने गाँव में जन जागरण फैलाने का काम किया जैसे लोगों को स्वच्छता के लिए प्रेरित करना। भाषा की समस्या के कारण गाँव में लोगों को बीमारी की विभीषिका के बारे में चेतावनी देना असंभव था। यह कार्य डाकुआ ने भली भाँती किया।

मुंडा - मानकी प्रथा में मानकी एक अपील के न्यायलय की तरह है। ये अनेक हो गाँव की काउन्सिल का अध्यक्ष है। कभी - कभार अगर कोई वाद मुंडा और ग्राम वासियों द्वारा हल नहीं हो पता था तो वह मानकी के पास भेजा जाता था। सामूहिक निर्णय प्रक्रिया, आपसी सहयोग और समानता के आधार पर चलती है। जनजातीय संस्थाएं जैसे अखड़ा ग्रामीण लोकतंत्र और स्थानीय स्वशासन को सुदृढ़ करता है। " सबका साथ सबका विकास " जैसा नारा इन जनजातियों में पहले से ही निहित है।

7 <https://www.ijtsrd.com/papers/ijtsrd57407.पीडीऍफ़>

8 दैनिक भास्कर, चौबास, पश्चिम सिंधभूम, झारखण्ड, १७ सितम्बर २०२१

इस तरह हम देखते हैं कि जनजातीय संस्कृति और दर्शन " प्रकृति मानव" सम्बन्ध कि बात करते हैं जो शोषण पर आधारित नहीं है। दोनों एक दुसरे को सम्मान और सहभागिता कि दृष्टि से देखते हैं और यही "सतत विकास" का मूल तत्त्व है। आधुनिक सामाजिक विज्ञान के इकोलॉजिकल एंथ्रोपोलॉजी और एसोफेमिनिस्म जैसे क्षेत्रों में यह अत्यंत प्रासंगिक है।

सन्दर्भ :

1. रॉय,एस सी , १९१२, मुंडा और उनका देश, कलकत्ता।
2. डाल्टन , कर्नल ई टी , १८७३, चुटिया नागपुर और अन्य स्थानों में रूड स्टोन स्मारक। जर्नल ऑफ़ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, वॉल्यूम -XLII (१) : ११२-९
3. देहों , पी , १९०६, ओराओं का धर्म और रीती रिवाज। कलकत्ता ; एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल प्रेस की यादें।
4. मजूमदार , डी एन १९५० , जनजातियों के मामले : जनजातीय गतिशीलता का अध्ययन। लखनऊ ; यूनिवर्सल प्रेस।
5. दत्ता, बी., गांताई, एस., हांसदा, एस., & दास, ए. के. (2024). डॉक्युमेंटेशन ऑफ़ इंडिजेनस मेडिसिनल नॉलेज ऑफ़ सेलेक्ट ट्राइबल कम्युनिटी ऑफ़ वेस्ट बंगाल। जर्नल ऑफ़ डाटा साइंस , इन्फार्मेटिक्स एंड साइटेशन स्टडीज, ३ (३), ३४९-३५५। (<https://doi.org/10.5530/jcitation.3.3.३४>)
6. <https://www.kurukhtimes.com/wp-content/uploads/2025/01/The-Historical-significance-of-Rohtasgarh-and-Oraons-edited-version-Final-2.पीडीएफ>
7. भट्टाचार्य , एस. (2022). इंडिजेनस नॉलेज एंड एथ्नोमेडिसिन्स ऐज एन इफेक्टिव सोर्स ऑफ़ ट्रीटमेंट: अ स्टडी ऑन कोर्बिस ऑफ़ कारबी आंगलॉग , अ स्टडीज ऑन एथनो - मेडिसिन्स , 16(3-4). <https://doi.org/10.31901/24566772.2022/16.3-4.655>